

मध्यप्रदेश के एक गांव ककैया में आखें खुलीं। इसके पहले अंधेरा ही था। रातें डरावनी होती थीं। दिन को कुछ दिखाई नहीं देता, कुछ समझ नहीं आता। सात साल की उम्र में, मैं प्रायमरी शाला का सबसे बेकार विद्यार्थी था। दिल खेलकूद में ही रहता था। निगाहें रहती थीं खिड़की के बाहर नीले आसमान पर, पेड़ों पर, चिड़ियों की तरह मन भटकता रहता था।

हमारे शिक्षक श्री 'पंडित जी' स्कूल के हेडमास्टर, मेरे पिता के मित्र थे। इन्हें कुछ दया आई। एक दिन पढ़ाई के बाद इन्होंने मुझे रोका। एक पेंसिल से शाला की सफेद दीवार पर इन्होंने एक 'बिंदु' बनाया और कहा : तुम यहाँ बैठो सब भूल जाओ, शाला को, खेल को, कुटुम्ब को। केवल इस बिंदु पर ध्यान दो, इसी पर मन लगाओ। यह क्रम जारी रहा कई दिन, बाद में दूसरे विषय पढ़ाये गये। नये शिक्षक मिले। एकाग्रता बढ़ती गई, चेतावनी मिली। 'बिंदु' शून्य था, सूर्य बन गया, प्रकाशमय, रंग दिखे, नये जीवन का प्रारम्भ हुआ।

यह 'पाठ' आज 50 साल से मेरे जीवन में समाया रहा है। समय बदला, परिस्थितियाँ बदलीं, देश-विदेश जाना पड़ा, मगर वास्तव में असलियत एक ही रही। अपने को ढूँढ़ना, अपनी सोती हुई शक्तियों को जगाना आसान नहीं है। एकाग्रता, चिन्तन और साधना से ही आत्मविश्वास हो सकता है।

आरंभिक दिनों की बहुत-सी यादें हैं। ज़िन्दगी और कला के बारे में भी कुछ कहना है। समय कम है। शब्द नहीं मिलते हैं। अतल शून्य की अनंतता कौन समझा सकता है। इसीलिये चाहता हूँ- मैं न बोलूँ, चित्र बोलें।

~~हैदर रज़ा~~